मध्यस्थ दर्शन (सह-अस्तित्ववाद) के प्रचार के 1 क्रम में

# शिक्षा-दर्शन

शिक्षा-दर्शन ही शिक्षा का आधार है। शिक्षा के अभीष्ट में शिष्टता समाहित है। शिष्टता एवं दर्शन ही शिक्षा होता है। मूलतः शिक्षा परम्परा में जीवन के सभी आयामों, कोणों, दिशा एवं परिप्रेक्ष्य सम्बन्धी स्पष्ट गति एवं गम्यता के अर्थ में शिक्षा का आदान-प्रदान अपरिहार्य सिद्ध होता है। शिक्षा; शिक्षा मानस की समृद्धि और उसके व्यवहारिक प्रक्रिया पर निर्भर करता है। अभी शिक्षा मानस की समृद्धि पर ध्यान देना आवश्यक है। हम साक्षरता, तकनीकी और विज्ञान को चरितार्थ करने की दिशा में अपार प्रयास किये एवं करते आ रहे हैं। यह एक यांत्रिकता की सीमा में प्रयोजन सिद्ध हुआ। मनुष्य सर्वतया यांत्रिक नहीं है, मूल में मनुष्य में संचेतनशीलता का होना पाया जाता है। मनुष्य में पाई जाने वाली संचेतना की तृप्ति के अर्थ में ही शिक्षा सार्थक होती है। संचेतना चरितार्थता इसकी तृप्ति के अर्थ में है। संचेतना संज्ञानशीलता एवं संवेदनशीलता का संयुक्त रूप होने के कारण सार्वभौम गुण, स्वभाव में ही मनुष्य का अतिसंतृप्त होना देखा जाता है। संचेतना की सार्वभौमता एवं मूल्यों की पहचान इसके मूल्यांकनवादी चरित्र में सार्थक होता है। मूल्य, मूल्यांकन प्रक्रिया एवं ज्ञान अथवा संचेतना का परम्परागत होना व्यवहारिक है। प्रत्येक विद्यार्थी में ज्ञान, समझ एवं संचेतना समान रूप में वर्तमान है। इसी की अभिव्यक्ति, प्रक्रिया, प्रणाली एवं पद्धति को शिष्टता एवं सामाजिकता पूर्ण स्वरूप देना ही शिक्षा का ऐश्वर्यकारी कार्यक्रम है।

भौतिकवादी चेतना को व्यवहारिक मान लेने पर वह यांत्रिक हो जाता है अथवा यांत्रिकता के अर्थ में अपने अर्थ को स्पष्ट कर पाता है, तब अधिभौतिकवादी चरित्र आदर्शप्राय हो जाता है। यदि अधिभौतिकवादी चरित्र को व्यवहारिक मान लिया जाय, जिसमें मानव सहज जीव कारुण्य प्रकाशित होता है, वह यांत्रिकता अर्थात भौतिकवादिता को नगण्य मानने लगता है। अथवा भौतिकवादी चरित्र को अपनाया हुआ मनुष्य समुदाय भौतिकवादियों से प्रताड़ित होता हुआ देखा गया है। इसकी दार्शनिक सत्यता भी अनभिज्ञता की स्थिति में ही स्पष्ट होता है। अधिभौतिकवादी चेतना से पदार्थ को, एवं भौतिकवादी पदार्थ से चेतना को निष्पन्न कराने के पक्ष में असमर्थ तर्क देते गये। फलतः अधिभौतिकवादी अपने को रहस्य में, भौतिकवादी अपने को अनिश्चयता एवं अस्थिरता में अंत करने के लिये बाध्य हुए। इस प्रकार दोनों ही वाद प्रत्येक मनुष्य से सम्बद्ध दिशा, कोण, परिप्रेक्ष्य एवं आयाम

सम्बन्धी स्पष्ट नीति एवं गम्यता को प्रभाषित एवं प्रबोधित करने में असमर्थ रहा। यही विग्रह बिन्दु है। इस बिन्दु से उभरने के लिये शिक्षाविद एवं विद्वानों के पास दो ही विकल्प हैं - (i) दोनों विचारधाराओं को मिलाकर, घटाकर, जोड़कर एवं काटकर यदि सार्वभौम समाधान उक्त सभी बिन्दुओं के अर्थ में निकलता है तो उसे व्यवहार रूप देने के लिये प्रयास करना चाहिए। अन्यथा (ii) विकल्पात्मक विश्वदृष्टिकोण को अनुसंधान पूर्वक विकसित करना चाहिए, इसी क्रम में विकल्पात्मक विश्वदृष्टिकोण समीचीन होने की स्थिति में उसे सर्वतया हृदयंगम करने का प्रयास करना चाहिए तदोपरान्त सार्वभौमता सिद्ध होने की स्थिति में उसे व्यवहार शिक्षा एवं व्यवस्था का स्वरूप देने के लिये कटिबद्ध होना चाहिए। इसी क्रम में मध्यस्थ दर्शन (सह-अस्तित्ववाद) हमें उपलब्ध है।

मध्यस्थ दर्शन सत्ता अर्थात् चेतना में सम्पृक्त प्रकृति को अस्तित्व सर्वस्व प्रतिपादित किया है, इसमें दोनों तर्क अर्थात् चेतना से पदार्थ और पदार्थ से चेतना को निष्पन्न कराने का सम्पूर्ण तर्क व्यर्थ सिद्ध हो जाता है। यह स्वयं स्पष्ट है कि अस्तित्व न कभी घटता है और न कभी बढ़ता है। अस्तित्व में आज के स्तर में जो भी परिवर्तन हो रहा है, उसे हम कैसा भी नाम दें किन्तु मूलतः कोई वस्तु न उत्पन्न होती है और न नाश होता है। अस्तित्व के अतिरिक्त कोई वस्तु या स्थिति की कल्पना करने की व्यवस्था मनुष्य के पास नहीं है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि अस्तित्व को समझने के स्थान पर हम हजारों वर्षों से भटकते आ रहे हैं। इस प्रकार सत्ता में सम्पृक्त प्रकृति अस्तित्व सर्वस्व होने के कारण अस्तित्व स्वयं सह-अस्तित्व होने की सत्यता को मध्यस्थ दर्शन प्रतिपादित करता है।

सत्ता में सम्पृक्त प्रकृति नित्य साम-रस्य रत होने की सत्यता को सत्ता में नियंत्रित प्रकृति नित्य क्रियाशील एवं विकासशील होने के साक्ष्य को स्पष्ट किया इससे चेतना में सम्पृक्त प्रकृति का चेतना में सामरस्य

-रत होने की सत्यता स्पष्ट हो जाती है साथ ही विकासशील प्रकृति विकास क्रम घटना पूर्वक विभिन्न पदों में होने विभिन्न अर्थों अर्थात् मूल्यों को अभिव्यक्त एवं प्रकाशित करने की व्यवस्था को मध्यस्थ दर्शन स्पष्ट करते हुए इस पृथ्वी पर चार अवस्था की सृष्टि को निरूपित किया है। जिसे क्रमशः (i) पदार्थावस्था (ii) प्राणावस्था (iii) जीवावस्था (iv) ज्ञानावस्था का नाम प्रदान किया है, साथ ही क्रम से विकसित होने की सत्यता को स्पष्ट किया एवं मनुष्य को सर्वोच्च विकसित इकाई निरूपित किया है। यह दर्शन मानव को ज्ञानावस्था की इकाई होने की गरिमा एवं महिमा को प्रबोधित करते हुए जीवों से मौलिक रूप से भिन्न होने की सत्यता को उद्घाटित किया।

मध्यस्थ दर्शन जीवन-प्रतिष्ठा की ओर संचेतना को स्पष्ट करते हुए जड़ प्रकृति विकसित होकर चैतन्य पद में प्रतिष्ठित होने की व्यवस्था को अर्थात् नियति क्रम व्यवस्था में अध्ययन सुलभ कर दिया, इससे जीवन और शरीर की मौलिक भिन्नता प्रतिपादित होती है। जीवन गठन-पूर्णता प्राप्त एक परमाणु होने की सत्यता को उद्घाटित किया है फलतः जीवन का अमरत्व और शरीर का नश्वरत्व इंगित होता है। यही जीवन संचेतना के स्वरूप में शरीर के द्वारा निरंतर प्रकाशमान है। जीवन में ही संज्ञानीयता एवं संवेदनशीलता का अपेक्षाकृत अत्यधिक प्रचुरता से होना पाया जाता है। संज्ञानीयता एवं संवेदनशीलता प्रत्येक जीवन में अर्थात् प्रत्येक मनुष्य में समान रूप में रहता है। इस समान संचेतना का स्वरूप देना ही अथवा समाज संचेतना के रूप में वर्तने योग्य संस्कार, प्रबोधन, प्रयोग एवं व्यवहार रूप देना ही शिक्षा का अनिवार्य कार्य है। संचेतना में संस्कार और प्रबोधन पूर्वक ही गुणात्मक विकास होता है। इसी सत्यतावश शिक्षा-संस्कार पूर्वक मनुष्य के सामाजिक होने की व्यवस्था समीचीन रहती है।

शिक्षा में प्रधानतः मूल्यों को इंगित करना अति आवश्यक है। मूल्य ही मूल्यांकन का आधार है। मनुष्य जीवन मूल्य एवं मानव मूल्य को पहचानने पर ही वह सामाजिक होने की व्यवस्था है। केवल वस्तु मूल्य से मनुष्य को सामाजिक बनाना संभव नहीं है क्योंकि वस्तुएं समाज गति के लिये उपयोगी होती हैं। वस्तु ही सम्पूर्ण मूल्य अर्थात् समाज मूल्य, मानव मूल्य और जीवन मूल्य नहीं होता। इसके विपरीत जीवन शक्तियां परावर्तित होकर श्रम के रूप में प्राकृतिक ऐश्वर्य पर नियोजित होती हैं फलतः इसमें उपयोगिता मूल्य एवं कला मूल्य का सिद्ध होना देखा जाता है। शरीर के द्वारा जीवन अपने कार्यविन्यास को अभिव्यक्त करता हुआ व्यवसाय और व्यवहार के रूप में देखा जाता है। जिसमें से व्यवहार में सामाजिक होना एवं व्यवसाय में अधिकाधिक

 

उत्पादन सिद्ध करना ही सम्पूर्ण अभीष्ट है। इस प्रकार मनुष्य व्यवहार में सामाजिक होने एवं व्यवसाय में स्वावलम्बी होने के अर्थ को सार्थक बनाना ही शिक्षा संस्कार की सार्थकता है। व्यवहार में मनुष्य की संज्ञानशीलता एवं संवेदन-शीलता की संयुक्त प्रयुक्ति की आवश्यकता है। व्यवहार में ही मूल्यांकन की निरंतर आवश्यकता बनी रहती है। इस प्रक्रिया को सुलभ बनाने के लिये एवं मानव संचेतना को पहचानने के लिये मध्यस्थ-दर्शन सर्वतया अध्ययन सुलभ कराता है। गठन-पूर्णता प्राप्त एक परमाणु में मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि एवं आत्मा जैसी अक्षय बल एवं आशा, विचार, इच्छा, संकल्प, व अनुभव जैसी अक्षय शक्तियाँ अनवरत प्रत्येक मनुष्य में प्रकाशमान होने की सत्यता को स्पष्ट करते हुए इन अक्षय बल एवं शक्तियों का संयुक्त स्वरूप ही संचेतना होने, संचेतना स्वयं संज्ञानशीलता एवं संवेदनशीलता का सम्मिलित रूप होने के साक्ष्य में प्रत्येक मनु व्यक्ति को प्रस्तुत किया है। मानव संचेतना मानव का स्वत्व होने के सत्य को प्रतिपादित करते हुए मानव संचेतना ही मानवीयता एवं मानवीयता को मानव व्यवहार का आधार होने की सत्यता का अध्ययन सुलभ किया है।

मध्यस्थ दर्शन में मनुष्य के सम्बन्ध में जो भी कहा गया है वह प्रत्येक मनुष्य में देखने को मिलता है, इस प्रकार मध्यस्थ दर्शन मानव को केन्द्र में रख-कर सम्पूर्ण अध्ययन करता है। जीवन अथवा जीवन संचे-तना की अस्तित्व से अनुभूति तक का सूत्र होने के सत्य को स्पष्ट किया है जिससे मनुष्य का दायि-त्व एवं कर्तव्य स्पष्ट हो जाता है। जीवन की गरिमा, महिमा को शरीर और शरीर जन्य अथवा शरीर कृत कार्य विन्यास की उपयोगिता, आवश्यकता एवं प्रयोजनीयता को पहचानने की दिशा में यह एक देन सिद्ध हुआ है। इन सम्पूर्ण आवश्यकता, उपयोगिता एवं प्रयोजनीयता को समाज संचेतना के रूप में पाने के लिये शिक्षा संस्कार की व्यवस्था हमें करतल गत हो जाती है। शिक्षा को मूल्यों के अर्थ में एवं संस्कारों को मानव के परस्पर पहचान के अर्थ में प्रावधानित करने की व्यवस्था एवं इसकी निरंतरता से ही सम्पूर्ण सीमाओं से ग्रसित मानस मुक्त होने की व्यवस्था है।

मध्यस्थ दर्शन (सह-अस्तित्ववाद) निम्न विचारों का भी विकल्प सिद्ध हुआ है—

(i) रहस्यात्मक अध्यात्मवाद के स्थान पर अनुभवात्मक अध्यात्म-

वाद सुलभ हो गया है, जिससे मानव प्रमाण व प्रामाणिकता एवं उसकी निरंतरता में ही आश्वस्त एवं विश्वस्त होने की व्यवस्था को प्रतिपादित किया है। प्रमाण को प्रयोग व्यवहार तथा अनुभव सिद्ध होना निरूपित किया है, साथ ही अनुभव पूर्वक व्यवहार व प्रयोग सार्थक होने की सत्यता को स्पष्ट करते हुए अनुभव केवल सत्य में, से, के लिये होना निरूपित किया। सत्य ही अध्यात्म होने के कारण अनुभवात्मक अध्यात्मवाद सिद्ध हो जाता है। सत्य में संचेतना अनुभूत होने की तृषा एवं व्यवस्था की संतुष्टि एवं समाधान के अर्थ में, विकास एवं गुणात्मक विकास के क्रम में अध्ययन सुलभ किया है। जैसे - गठन, क्रिया एवं आचरण पूर्णता का प्रतिपादन विश्लेषण पूर्वक सुलभ हुआ है। परमाणु में गठन-पूर्णता पर्यन्त मात्रात्मक विकास के साथ गुणात्मक विकास होने उसके अनन्तर गुणात्मक विकास अपरिष्कृत संचेतना से परिष्कृत एवं परिष्कृत पूर्ण संचेतना के स्वरूप में प्रकाशित होने को स्पष्ट करते हुए, परिष्कृत संचेतना पूर्वक मानव सामाजिक होने की सार्वभौम व्यवस्था स्पष्ट ~~[illegible]~~ किया है।

संघर्षात्मक जनवाद के स्थान पर व्यवहारात्मक जनवाद का प्रबोधन मध्यस्थ दर्शन के विश्व दृष्टिकोण के अनुसार हृदयंगम करने की व्यवस्था है। इसका आधार लोकांक्षा (न्यायापेक्षा एवं सही करने की इच्छा) व लोक लक्ष्य (समाधान, समृद्धि, अभय एवं सह-अस्तित्व) की सार्वभौमता है। इसे सार्थक बनाने के लिये सहज शिक्षा-संस्कार एवं व्यवस्था की क्षमता व दायित्व को प्रतिपादित किया है। प्रत्येक मनुष्य में न्यायापेक्षा एवं कार्य व्यवहार को सही ढंग से करने की इच्छा एवं सार्वभौम लक्ष्य विद्यमान रहता है साथ ही मनुष्य रुचि के स्थान पर वैविध्य होने की विवशता को स्पष्ट किया है। रुचियों (इन्द्रिय लिप्सा) का नियंत्रण सार्वभौम ~~इन्द्रिय [illegible] के अर्थ [illegible]~~ लक्ष्य व आकांक्षा सुलभ होने वाले शिक्षा संस्कार व्यवस्था को स्पष्ट कर दिया है। इस प्रकार मानव संचेतना की सार्वभौमता असंदिग्ध रूप में अध्ययन सुलभ हो जाता है, जिससे वर्ग, समुदाय, रंग, नस्ल, जाति, पंथ एवं मतादि से मुक्त मानव संचेतना वादी एवं कारी स्वतंत्रता व अधिकार पूर्ण व्यवहार परम्परा को स्थापित करने साथ ही उसकी निरंतरता सतत वर्तमान रहने की संभावना समीचीन हुई है। इसे सफल सार्थक एवं व्यवस्थित रूप देना हमारा लक्ष्य एवं कर्तव्य है।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के स्थान पर समाधानात्मक भौतिकवाद को मध्यस्थ दर्शन स्पष्ट किया है, जिसके साम्य में इतिहास, अस्तित्व में विकास एवं विकास क्रम घटना स्वयं समाधान एवं उसकी निरंतरता होने की सत्यता को अध्ययन सुलभ करते हुए मानव संचेतना अक्षय बल व अक्षय शक्ति सम्पन्न होने की सत्यता को स्पष्ट किया है, जिससे प्रत्येक मनुष्य अधिक उत्पादन एवं कम उपभोग करने योग्य इकाई है को ज्ञात कराता है। साथ ही मनुष्य परिष्कृत संचेतना पूर्वक अर्थ की सुरक्षा एवं सदुपयोग करने फलतः आवश्यकताएँ संयत होने की सत्यता को उद्घाटित किया है जिससे आवश्यकता से अधिक उपलब्धि की संभावना नित्य समीचीन होने की सत्यता स्पष्ट होती है, इस प्रकार परिष्कृत एवं परिष्कृत पूर्व संचेतना पूर्वक अनुभवात्मक अध्यात्मवाद, मूल्य वाहकता के मूल्यांकन रूप में, व्यवहारात्मक जनवाद तथा अधिक उत्पादन कम उपभोग सहित आवर्तनशील अर्थ व्यवस्था के रूप में, समाधानात्मक भौतिकवाद मानव के सभी कोण, आयाम, परिप्रेक्ष्य एवं दिशा में चरितार्थ होने की व्यवस्था है।

उक्त तथ्यों को हृदयंगम करने के उपरान्त निम्न तीन समस्याओं का समाधान व्यवहार सुलभ हो जाता है। जैसे -

i) भोगोन्मादी रुचि के स्थान पर व्यवहारवादी रुचि-स्वभाव को
ii) कामोन्मादी मनोविज्ञान के स्थान पर मानव संचेतना (परिष्कृत संचेतना) वादी तथा कारी संस्कार प्रक्रिया व प्रवृत्ति को
iii) लाभोन्मादी अर्थव्यवस्था के स्थान पर लाभ हानि मुक्त आवर्तनशील श्रम नियोजन व श्रम विनिमयवादी अर्थ व्यवस्था को समग्र प्रकार से अध्ययन पूर्वक व्यवहार सुलभ करना व्यवहार शिक्षा का स्वरूप है, इसे ही सर्वतया हृदयंगम कराता है।

जन्म से ही प्रत्येक मनुष्य संचेतनशील है एवं जीवन है। संचेतना की तृप्ति के लिये सम्पूर्ण कार्य-व्यवहार विचार और अनुभव करते हुए मनुष्य को देखा जा रहा है। तृप्ति या अतिसंतृप्ति का ही नामकरण या स्थिति सुख, शांति, संतोष एवं आनन्द है। आनन्द का स्वरूप सार्वभौम अर्थात् प्रामाणिकता पूर्ण होते तक संचेतना में तृप्ति होता हुआ देखा नहीं जाता। कोई व्यक्ति किसी कार्य में अनुचित हो सकता है, फलस्वरूप वह आनन्द प्राप्त करने का दावा करता है, किन्तु उसके दूसरे ही क्षण उसके अत्याशी होने का भागदारी

इस प्रकार मिल जाता है कि वह स्वयं इन्द्रिय क्रिया-कलापों के द्वारा आनन्द की तलाश में होता जाता है। द्वितीय-तत्वों को आग अच्छे लगते हुए छूने पर आहत हो जाता है उसके पश्चात उसको छूना नहीं चाहेगा और कोई भी बच्चा असत्य, स्तेय, एवं परिग्रह से आनन्द का अनुभव नहीं करता है वह प्रौढ़ होने के पश्चात इसके विपरीत पक्ष का भी हो जाता है और प्रौढ़ या युवावस्था में इन्द्रिय सन्निकर्षात्मक आनन्द को आनन्द समझने पर भी इसकी निरंतरता न होने की बाधा से उससे विमुख होना पड़ता है या अन्य प्रकार से आनन्द की तलाश करता है।

प्रियाप्रिय, हिताहित एवं लाभालाभ दृष्टियों से सामयिक रूप से सुख या दुःख की झलक मिलती है। मनुष्य को प्रौढ़ होने के पश्चात समझना पड़ता है कि इस सीमा में इसकी निरंतरता नहीं है। इन सभी साक्षियों से स्पष्ट हो जाता है कि अबोध-सबोध अवस्थाओं में अपरिपूर्णता वादी कार्य व्यवहार से पूर्णता की अपेक्षा सिद्ध नहीं होती साथ ही यही पराभव अथवा वास्तविकता है जो आनन्द की निरंतरता के लिये इसे उत्प्रेरित करता है। इसी सत्यता वश आनन्द का भोक्ता कौन है को पहचानने की आवश्यकता हुई। संचेतना जीवन का स्वरूप होने के कारण संचेतना के अक्षयता की निरंतरता शिशु, बाल्य, कौमार्य एवं वृद्धावस्था में भी सम्पूर्ण मनुष्य में देखने को मिलता है। इस प्रकार संचेतना की तृप्ति ही जीवन तृप्ति है। जीवन तृप्ति का स्वरूप समाधान और प्रामाणिकता ही है। प्रामाणिकता और समाधान सार्वभौम एवं शाश्वत है। अस्तु जीवन तृप्ति का शाश्वत स्रोत स्पष्टतया मध्यस्थ दर्शन के रूप में प्राप्त है, इसे पाना ही व्यवहार शिक्षा की भूमिका है। इस प्रकार व्यवहार शिक्षा संचेतना की तृप्ति को ध्यान में रखते हुए मानव के साम्य लक्ष्य और आकांक्षावादी तथ्य को निरूपित करता है।

सार्वभौम आकांक्षा और मानव के समृद्धि, समाधान, अभय, सह-अस्तित्व यही सार्वभौम लक्ष्य भी है। समृद्धि, आर्थिक, उत्पादन से, समाधान क्यों और कैसे की जिज्ञासाओं के उत्तर से, अभय न्याय व विनिमय सुलभता से और सह-अस्तित्व मूल्य और मूल्यांकन सहित समीकृत व्यवहार सर्वसुलभ होने की प्रेरणा को मध्यस्थ दर्शन अध्ययन सुलभ कराता है।

दिव्य पथ संस्थान
अमरकंटक